नाट्यशास्त्र की कथावस्तु के नियामक तत्त्व

प्रो0 श्रीप्रकाश राय*
सुन्दरम्*

नाट्यकार की मूलभावना कथावस्तु में ही निहित होती है जिसके माध्यम से वह एक विशेष प्रकार की शिक्षा अपने समाज को देना चाहता है। इसके माध्यम से तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रभाव को जाना तथा समझा जाता है। नाटक की कथावस्तु जितनी प्रभावशाली होगी उतना ही प्रभावशाली मंचन का प्रदर्शन होगा और उसका मंचन दर्शकों पर उतना ही ज्यादा प्रभाव छोड़ेगा। नाटक की कथावस्तु उसके देश, काल में समस्त वृत्तियों का वहन करती है। चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक, व्यवहारिक, आर्थिक, भौगोलिक कोई भी हो। नाटक की कथावस्तु के आरम्भ और विकास में नाटककार की परिपक्वता एवं कल्पनादर्शिता की अहम् भूमिका होती है। वह अपनी चतुराई से कथावस्तु को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। उसके माध्यम से वह दर्शकों में कौतूहल को उत्पन्न करता है तथा उसे जागरूक रखता है।

ईशा की प्रथम शताब्दी में नाटकों की कथावस्तु पौराणिक और ऐतिहासिक होते हुए भी सामाजिक मर्म को प्रस्तुत करने में पूर्णतः समर्थ थी। उनके नायक पारलौकिक होते हुए भी जननायक के रूप मं सामाजिक में हृदयस्थ थे। उत्तरकाल में क्रमशः मानवीय मूल्यों का हास हुआ, भारत देश ने अनेक प्रकार की राष्ट्रीय आपदाओं को झेला जिसके फ्लस्वरूप मानवीय मूल्यों के उत्थान तथा राष्ट्र गौरव के उत्कर्ष हेतु विभिन्न नाटकों में कथावस्तु का चयन हुआ। यद्यपि इनकी कथावस्तु भी पौराणिक तथा ऐतिहासिक थी पिफर भी इसमें राष्ट्रीय चेतना की स्पूफर्ति देखी जाती है।

आधुनिक काल के नाटक यथार्थ पूर्ण चित्रण प्रस्तुत करते हैं जिसमें देश और लोक में घटित होने वाली घटनाएँ हैं। ये घटनाएँ श्रव्य ही नहीं अपितु लोक ने जिसका अनुभव और साक्षात्कार किया है, उनको कथावस्तु बनाकर आधुनिक नाट्यकारों ने नाट्यरचना को प्रशस्त किया है। इस प्रकार की कथावस्तु को रमा चौधुरी, पण्डिता क्षमाराव, लीलाराव दयाल, वी0 राघवन, घनश्याम मणिकलाल

***शोध निर्देशक विश्वविद्यालय आचार्य एवं अध्यक्ष स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)**
***शोध–छात्रा संस्कृत विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)**

इत्यादि आधुनिक नाटककारों ने अपने नाटकों में प्रस्तुत किया। ऐसी स्थिति में भारतीय नाट्यकार जीवन के दुःख और क्लेश को आध्यात्मिक शिक्षा देने का एक साधन भी मानता है जिसका अन्त सदा सुखद और कल्याणप्रद ही होता है।

भारतीय नाट्यकला अनेक विषय–वस्तु से सम्बद्धित होने पर भी उसकी मूलभावना मानव के शाश्वत मूल्यों की स्थापना में ही निहित है। भारतीय नाट्यकला सात्त्विक भावों के उदय का आज एक प्रबल माध्यम बन चुकी है। वस्तुतः कला का मुख्य प्रयोजन सत्य, शिव तथा सुन्दरं का उदय ही है। नाटक कला का आनन्दमय होना नितान्त उचित है। इन्हीं दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक दृष्टियों को लक्ष्य में रखने से भारतीय नाटक सर्वदा सुखान्त ही होता है।

स्वरूप एवं भेद–संस्कृत साहित्य रचना परम्परा अपनी विविध विधाओं में अविच्छिन्न रूप से विकसित हो रही है। इसी परम्परा की एक कड़ी संस्कृत का नाट्य साहित्य है जो कि प्राचीनकाल से आज तक अत्यन्त समृद्ध है। वस्तु किसी भी साहित्य विधा का मूल तत्व है। नाट्य रचना में वस्तु के विकास एवं परिणति पर ही स्वरूप तथा भेद पक्षों का विस्तृत विवेचन है। वस्तु के विभिन्न अंगों का नाटक के व्यापारात्मक संकल्प के साथ सम्बन्ध है। कोई भी घटनाक्रम एवं संयोजन अर्थप्रकृति कार्यावस्था और सन्धि के योग से विकसित होता हुआ रस को प्रवाहक बनाता है।

सूत्राधार जब प्रस्तावना प्रारम्भ कर देता है तभी किसी अन्य पात्रा का रंगमंच पर प्रवेश होता है और मुख्य कथानक का आरम्भ हो जाता है तब 'बीज', 'मुखसन्धि', 'प्रतिमुखसन्धि' आदि के मार्ग से होता हुआ कथानक अन्त में विकास को (पूर्णता) प्राप्त करता है।

कार्योपक्षेपमादौ तनुमापि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्।
बीजानां गर्भितानां फ्लमपि गहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
कुर्वन्बुद्धया विमर्श प्रसूतमपि पुनः संहरन् कार्यजातं।
कर्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।।[1]

वस्तु का अर्थ नाटक में वर्णित कथानक को 'वस्तु' 'इतिवृत्त' 'कथा' आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। विभिन्न अर्थों के अनुसार वस्तु के भी विभिन्न अर्थ हैं। 'वस्तु' शब्द की निष्पत्ति 'वस्' धातु से 'तुन्' प्रत्यय लगाकर बना है। वस् का अर्थ आच्छादित करना। वस् धातु का प्रयोग रहना अर्थ में भी प्रयोग होता है। इस शब्द का मूल अर्थ रहने का स्थान या घर है। वस्तुतः शब्द स्वरूप वस्तु या कथा–भाग ही नाट्य का घर है और इसी अर्थ में भरत ने कथावस्तु के स्थान पर इतिवृत्त शब्द का प्रयोग किया है। 'इतिवृत्तं हि नाट्यस्य शरीरं परिकल्पितम्'[2] जिस प्रकार जीव को शरीर के कारण दृश्यत्व प्राप्त होता है उसी प्रकार वस्तुतत्व या कथा के योग से ही नाट्य को दृश्यत्व प्राप्त होता है।

शब्दकल्पद्रुम[3] में वस्तु द्रव्य पदार्थ पात्रा अर्थ एवं इतिवृत्त अर्थ मिलते हैं। आप्टे महोदय ने अनेक अर्थ किये हैं वस्तु विद्यमान, चीज, वास्तविक पदार्थ, सामग्री द्रव्य सम्पत्ति वैभव, सत् प्रकृति, किसी वस्तु की योजना रूप–रेखा आदि है।[4] भरत ने तो नाट्य वस्तु को शरीर कहकर रस को प्रमुख माना है और वस्तु को गौण माना अपितु उसे प्रधानता दी है क्योंकि शरीर से सारे कार्य की सिद्धि होती है। शरीर में आत्मा निवास करती है। शरीर की सत्ता न रहने पर शेष अंगों की कोई सत्ता नहीं है। इस प्रकार वस्तु के अभाव में नाट्य–रचना भी सम्भव नहीं है। नाट्य सिद्धि की तो बात ही क्या है।

आचार्य धनंजय ने रूपकों के तीन भेदक तत्व बताये हैं। वस्तु, नेता और रस। संस्कृत नाट्य इन त्रिविध तत्वों में वस्तु का सर्वप्रथम तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कथावस्तु का विन्यास नाट्य का मूलतत्व है। कथावस्तु के द्वारा ही रस का निष्पदन्न होता है। नाटककार कथावस्तु के द्वारा सहृदय सामाजिकों का मनोरंजन करने के साथ उपदेश तथा आदेश की स्थापना आदि कृत्यों को सम्पन्न करता है। इसके द्वारा पात्राों का चरित्रा उभरकर सामाजिकों के समक्ष प्रस्तुत होता है। रूपकों के लिए कथा आवश्यक होती है। धनंजय के अनुसार रूपक को नेतृ रसानुगुण्या कथा कहकर सम्बोधित किया है। रस प्रधान है रस और नायक के अनुकूल कथा की रचना की जाती है। यदि भरत ने नाट्य की आत्मा रस माना तो कथावस्तु नाट्य का शरीर कहना युक्ति युक्त प्रतीत होता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय अरस्तु तो कथावस्तु को सर्वप्रधान तत्व स्वीकार करते हैं। भारतीय नाट्यशास्त्रियों ने रस को मुख्य तत्व स्वीकार किया है।[5]

नाट्य वस्तु को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। भरत ने तो वस्तु को 'इतिवृत्त' कहा दशरूपककार ने तीन भेदक तत्वों में 'वस्तु' शब्द अभिहित किया है। नाट्यदर्पणकार[6] ने वस्तु को वृत्त कहा है। साहित्यदर्पणकार[7] ने वस्तु, रूपगोस्वामी[8] ने 'इतिवृत्त' तथा प्रतापरुद्रीय[9] में वस्तु को इतिवृत्त कहा गया है। ये कथावस्तु शब्दों के पर्यायवाची हैं। शारदातनय ने वस्तु एवं कथावस्तु को पर्यायवाची बताते हुए कहा है कि नायक आदि का चरित्र वर्णन 'इतिवृत' कहलाता है। सागरनन्दी ने 'इतिवृत्त' को वस्तु कहा है। गुरु दक्षिणा नाटकम् वरतन्तु, कौत्स तथा रघु की कथा नाटक की इतिवृत्त है। एकलव्य तथा द्रोण की कथा अंगुष्ठादानम् का इतिवृत्त है। सत्प्रेरणा नाटकम् में कवि शेखर तथा प्रेरणा का इतिवृत्त उद्धृत है।

प्राचीन आचार्यों ने इतिवृत्त और कथावस्तु को एक माना है। सीताराम चतुर्वेदी के मतानुसार इन दोनों को एक नहीं समझना चाहिए। वे दोनों को अलग मानते हैं। इतिवृत्त या कथा किसी नाटक के लिए आधार मात्र है, उनमें जितने पात्र होते हैं या जिस क्रम से घटनाएँ होती हैं उतने पात्र या उतनी घटनाएँ नाटक के लिए पर्याप्त नहीं हैं जैसे 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' में राजा का आश्रम जाना शकुन्तला

को देखकर मुग्ध होना, गान्धर्व विवाह, शकुन्तला का पति के पास भेजना निन्दा के भय से दुष्यन्त उसे स्वीकार नहीं करता है। किन्तु परिस्थिति से उनका मिलन हो गया इतना तो इतिवृत्त है। कवि कालिदास ने कथावस्तु को सात अंकों में बॉटा है। इतिवृत्त या कथा उस घटनाक्रम को कहते हैं जिसमें किसी नायक के जीवन का एक चरित पूर्ण आ जाए किन्तु अंकों या दृश्यों के अनुसार घटनाओं सजावट को कथावस्तु कहते हैं जिनमें अन्त तक नाटकीय कौतूहल बना रहता है।[10]

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण पर दृष्टिपात करें तो यह पता चलता है कि अधिकांश लक्षण ग्रन्थों में वस्तु का स्वरूप तथा उसके नामकरण के विषय में कुछ अधिक नहीं कहा गया है। अर्थात् नाटय में वर्णित वस्तु कथानक जो आख्यान वस्तु कथावस्तु एवं वृत्त वस्तु आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। शिंगभूपाल, शारदातनय ने थोड़ा विस्तार से कहा है। नाट्यशास्त्रा में वस्तु के नाम नाट्य में उसकी भूमिका के संबंध में जो कुछ भी सामग्री मिलती है, परवर्ती ग्रन्थकारों ने उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन किया तथा नाम निर्देश में थोड़ी बहुत भिन्नता है। इससे स्पष्ट होता है कि परवर्ती ग्रन्थकार को नाट्य सिद्धि का मूलभूत अंग मानते हैं।

नाम निर्देश के पश्चात् कथावस्तु के भेदों का निर्देशन किया गया है। वस्तु, योजना, अभिनय, रंगमंच पर प्रदर्शन की दृष्टि से तथा नाट्य धर्म की दृष्टि से कथावस्तु के अनेक भेद होते हैं।

अव्यक्ति की प्रक्रिया दृष्टि से भेद–समस्त नाट्य साहित्य को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं – पौराणिक नाट्य, ऐतिहासिक नाट्य, लोककथापरक तथा उत्पाद्य अथवा कवि कल्पना प्रसूत नाट्य। पौराणिक नाट्य से तात्पर्य उन नाट्यों से है, जिनमें पुराकथानक इतिवृत्त को उपजीव्य बनाया जाता है। किन्तु जिनकी सत्यता के लिए ऐतिहासिक तिथियों को साक्ष्य रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत में भारतीय परम्परा के तत्वों के व्याप्त होने पर इनसे ग्रहीत कथाओं को भी पौराणिक कहा जाता है। इसी प्रकार वैदिक आख्यानों व उपाख्यानों की कथा के रूपकों को पौराणिक नाट्य कहना उपयुक्त है। ऐतिहासिक रूपकों से तात्पर्य उन रूपकों से है जिनका सम्बन्ध इतिहास पर आधारित इतिवृत्त से है किन्तु इसमें इतिहास के समान न तो तथ्यों एवं आकड़ों का संग्रह होता है न विशुद्ध साहित्यिक कृति के समान काल्पनिक का निवेश। अतः जिनकी कथावस्तु प्रासंगिक या आधिकारिक रूप से ऐतिहासिक होती है। वे प्रधान या गौण रूप में ऐतिहासिक मात्र होते हैं। जैसे–मुद्राराक्षस आदि रूपक ऐतिहासिक कहलाते हैं। काल्पनिक रूपक वे हैं जिनमें वस्तु, पात्र परिस्थिति आदि प्रायः नाट्यकार की कल्पना द्वारा रचे जाते हैं। आजकल लिखे जा रहे सामाजिक रूपकों को इनके अन्तर्गत रखा जा सकता है क्योंकि ऐसे रूपकों में अधिकतर समकालीन धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि तत्कालीन समस्याओं पर आधारित कथानक

को प्रदर्शित किया जाता है।[11] इनके अतिरिक्त पं0 सीताराम चतुर्वेदी ने और भेद बताये हैं– प्रतीकात्मक, वास्तविक, आनुश्रोतिक।[12]

प्राचीन संस्कृत नाट्यशास्त्रो में प्रख्यात उत्पाद्य तथा मिश्र भेद से इतिवृत्त को तीन प्रकार का बतालाया है। इतिहास आदि से लिखा गया इतिवृत्त प्रख्यात कहलाता है। उपर्युक्त पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाट्यों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। कल्पना की सृष्टि इतिवृत्त को उत्पाद्य कहा गया है। प्रख्यात व उत्पाद्य के मिश्रण को मिश्र कहा गया है।[13] सभी नाट्यशास्त्रा आचार्यों कथानक वस्तु को अधिकारिक और प्रासंगिक दो प्रकार का बतलाया है। उन्होंने पताका प्रकरी से जो दो भेद किए वे इतिवृत्त के अंग हैं प्रकार नहीं। प्रत्येक कथानक में कुछ मूल कथा को पुष्ट करने में योग देती हैं। ये सब कथा का पुष्ट करने वाले या नाटक नायक के चरित्रा के विकास में योग देते हैं। या कथाप्रसंग में सहायता पहुँचाते हैं। किन्तु उन्हें कथावस्तु का प्रकार नहीं कहा जा सकता है। संवाद के भेदों को नियतश्राव्य को भी नाटकीय कथावस्तु का भेद मान लिया गया है। भारतीय आचार्यों ने अर्थप्रकृति, अवस्था और संधि की रचना का ढंग विस्तार से बताया है। यह भी बताया गया है कि वाक्य प्रयोग के द्वारा वस्तु विन्यास करना चाहिए। इतने से सन्तुष्ट न हों तो उन्होंने संधयंगों और संधयन्तरों की योजना बताई है। सीताराम चतुर्वेदी के शब्दों में त्रासद उस कार्य का अनुकरण है जो पूर्ण सर्वांगपूर्ण कार्य ऐसा भी हो सकता है जिसका कुछ विस्तार न हो।

प्राचीन आचार्यों ने जो भेद बताये वे वास्तव भेद नहीं अंग हैं। इस प्रकार विषय के अनुसार रूपक के छः भेद किए जा सकते हैं–(1) पौराणिक (2) ऐतिहासिक (3) आनुभौतिक (4) कल्पित (5) प्रतीकात्मक और (6) वास्तविक। अरलू, ने अपने काव्यशास्त्र में सम्पूर्ण बातों को न रखकर कुछ मुख्य बातें रख दी हैं जिसका सार यह है कि नाटक में पूर्ण एक इतिवृत्त होना चाहिए। वह निश्चित परिणाम का होना चाहिए। वास्तविक घटनाओं का वर्णन होना चाहिए जो सम्भाव्य हो और आवश्यक हो। उन्होंने दो प्रकार के इतिवृत माने हैं – साधारण और गूढ़। जिस कार्य में स्थिति परिवर्तन और अभिज्ञान के बिना ही पफलागम हो जाता है वह साधारण और जिसमें परिवर्तन या अभिज्ञान दोनों के समागम से पफलागम होता हो उसे गूढ़ माना है। प्राचीन नाट्याचार्यों ने संधि, अवस्था और प्रकृति को नाटक में आवश्यक माना है किन्तु सीताराम चतुर्वेदी सर्वमान्य नहीं मानते हैं। नाटक में प्रारम्भ और प्रयत्न होगा किन्तु बहुत से कुशल नाटककार प्रप्त्याशा और नियताप्ति को नाटकीय कौतूहल के लिए बाधक समझते हैं।

वस्तुतः नाट्यशास्त्र की परम्परा में वस्तु विभाजन अनेक प्रकार से किया गया है। फलाधिकार की दृष्टि से दशरूपककार धनंजय ने दो मुख्य भेद बताये हैं। आधिकारिक और प्रासंगिक।[14] इन्हीं आधिकारिक एवं प्रासंगिक इतिवृत्तों को

पंच अर्थप्रकृति, पंचअवस्था एवं पंचसन्धियों के अनुरूप व्यवस्थित किया जाता है। जिन दृश्यों की योजना अनिवार्य तो हो किन्तु सामाजिकों के मन पर जिनका दुष्प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो, यथा मृत्यु रति क्रीड़ा आदि इन्हें विष्कम्भक, प्रवेशक अंकावतार, व चूलिका नामक अर्थोपक्षेपकों सूचित किया जाता है।[15] संवाद अथवा नाट्यधर्म की दृष्टि से कथावस्तु सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य तथा

अश्राव्य होती है। नियतश्राव्य कथावस्तु को जनान्तिक, अपवारित तथा आकाशभाषित के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में भी कथावस्तु का जो विभाजन मिलता है वह कुछ सीमा तक भारतीय तत्वों से साम्य रखता है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र के कथावस्तु में इन्हीं नियामक तत्वों का वर्णन किया गया है।

संदर्भ सूची–

1 मुद्राराक्षस 4–5 उक्त पद्य में विशाखदत्त ने नाटक के निर्माण में अपनी अनुभूति कठिनाईयों का वर्णन किया है। नाटकीय विकास की दृष्टि से किसी भी नाटककार को बीज किन्तु पताका प्रफरी और कार्य इन पाँचों अर्थ प्रकृतियों का आरम्भ, यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम इन पाँचों अवस्थाओं का इन अर्थप्रकृतियों और अवस्थाओं के संयोग से निष्पन्न होने वाली मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण इन पाँचों सन्धियों का वर्णन करना परम् आवश्यक होता है।

2. ना0शा0, 21–1

3. राधाकन्तदेव बहादुर शब्दकल्पद्रमः, भाग–4, पृ0 31

4. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ0 99

5. वस्तुनेता रसास्तेषां भेदकः। द0रू0, 1/10

6. इदम् पुनर्वस्तु बुधैद्विविधं परिकल्पयते। सा0 दर्पण, षष्ठ अंक

7. ना0 चन्द्रिका, पृ0 4

8. प्रतापरूदीय, 3/3

9. इतिवृत्त कथावस्तु शब्दाः पर्यायवाचिनः। ब0र0स0

10. पं0 सीताराम चतुर्वेदी, प्रथम खण्ड, अ0 7, पृ0 103–4

11. वही, 1/16, 19, 22, 23

12. अभि0ना0शा0, प्रथम खण्ड, पृ0 102

13. प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रोद्यापि तत् त्रिाधा।
प्रख्यातभितिहासोदेरूत्पाद्यं कविकल्पितम्।। द0रू0रू0, 1/15
मिश्रं च संकरात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः। वही, 1/16

14. वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्ग प्रासङ्गिक विदुः। द0रू0, 1/11, पृ0

15. नीरसोनुचितस्तत्रा संसूच्यो वस्तुविसारः।
दृश्यस्तु मधुरादात्तरसभानिरन्तरः।
अर्थोपक्षेपकेः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।
विष्कम्भकचूलिकांकास्यांकावतारप्रवेशकैः।। द0रू0, 1/57–58